विष्णुगोप, अवमुक्त का नीलराज, वेंगी का हस्तिवर्मा, पालक्क का उग्रसेन, देवराष्ट्र का कुबेर, कुस्थलपुर का धनंजय, लेकिन समुद्रगुप्त ने इन राज्यों को अपने साम्राज्य में प्रत्यक्ष रूप से शामिल नहीं कर अपनी दूरदर्शिता का परिचय दिया तथा इन राज्यों को उनके स्वामी को वापस कर दिया। मध्ययुग में अलाउद्दीन खिलजी ने भी अपनी दक्षिण नीति को समुद्रगुप्त की नीति पर आधारित किया था तथा मुगलकालीन सम्राट औरंगजेब ने जैसे ही इस नीति का परित्याग किया, वैसे ही दक्षिण भारत में मुगल साम्राज्य की समाधि तैयार हो गई और वह पतनोन्मुख हो गया।

समुद्रगुप्त को उपरोक्त लोगों से मिलने वाली विजयों से आतंकित होकर सीमान्त प्रदेशों के शासकों ने बिना युद्ध किए ही उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। इन प्रत्यन्त राज्यों में — समतट, डवाक, कामरूप, नेपाल एवं कर्तृपुर। इन पाँचों राजतंत्रात्मक सीमांत प्रदेश का उल्लेख प्रयाग प्रशस्ति में मिलता है। साथ ही आर्यावर्त के पश्चिमी भाग में स्थित 9 गणराज्यों के नाम भी प्रयाग प्रशस्ति में उत्कीर्ण मिलते हैं, जिन्होंने समुद्र-गुप्त की अधीनता स्वीकार कर ली थी। उनके नाम हैं — मालव, अर्जुनायन, यौधेय, माद्रक, आभीर, प्रार्जुन, सनकानिक, काक और खरपरिक। चूँकि इन नामों के आगे आदि शब्द उत्कीर्ण है, अतः अनुमान किया जाता है कि इनके अतिरिक्त भी कुछ राज्य होंगे, जो समुद्रगुप्त की अधीनता स्वीकार कर लिए होंगे। इन उपरोक्त प्रत्यन्त राज्यों एवं गणराज्यों ने समुद्रगुप्त की अधीनता स्वीकार कर वार्षिक कर, उपहार, आज्ञापालन आदि द्वारा उसे संतुष्ट रखने का जो निर्णय लिया इससे समुद्रगुप्त की राजनीतिज्ञता,

Scanned with CamScanner

कूटनीतिज्ञता एवं दूरदर्शिता झलकती है, क्योंकि पश्चिम के गणराज्यों से विदेशी शकों को भारत से निष्कासित करने में कालान्तर में काफी सहायता मिली।

समुद्रगुप्त की दिग्विजय का प्रभाव विदेशी शक्तियों पर भी देखने को मिलता है। यही कारण है कि विदेशी राजा उसके मैत्री तथा उसके संरक्षण की आकांक्षा रखते थे। तथा उन्होंने आत्म निवेदन, कन्योपायन दान, उपहार तथा गरुड़ मुद्रा में अंकित उसके आदेशों को अपने राज्यों में प्रचलित करना स्वीकार कर लिया था। प्रशस्ति में इन राज्यों का नामकरण इन शब्दों में हुआ है — "देवपुत्र शाहि शाहानुशाहि शक मुरुण्डै: सैंहल कादिभिश्च सर्व द्वीप वासिभि:।" इन सभी राजाओं के साथ उसका मैत्रीपूर्ण संबंध का पता चलता है। इस तरह स्पष्ट होता है कि उसने संपूर्ण भारत तथा उसके समीपस्थ द्वीपों के साथ प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष संबंध स्थापित कर लिया था। जिसके फलस्वरूप शकों, कुषाणों, लंका तथा अन्य द्वीपों के निवासियों से साथ मित्रता स्थापित हुई। संक्षेप में कहा जा सकता है कि वह एक महान विजेता था, जिसका प्रभाव पश्चिम में अफगानिस्तान से लेकर पूर्व में आसाम तथा दक्षिण में भी लंका तक फैला हुआ था। स्मिथ के शब्दों में —

"पराक्रमांक समुद्रगुप्त का व्यक्तित्व सैकड़ों सुचरितों से अलंकृत था। तथा वह अनेकानेक गुणों से सिक्त उसकी कृति की ज्योत्सना ने अन्य राजाओं के कृति को अपने चरण तल की धूलि से मलीन कर दिया।"

इस प्रकार समुद्रगुप्त ने अपनी चिर आकांक्षा से एक विशाल साम्राज्य के निर्माण कार्य को पूरा किया।

अपनी दिग्विजय अथवा 'धरणिबन्ध' की योजना को सफलतापूर्वक सम्पन्न करने के बाद समुद्रगुप्त ने अश्वमेध यज्ञ का आयोजन किया था। यह सत्य है कि प्रयाग प्रशस्ति में इस महत्वपूर्ण घटना का उल्लेख नहीं मिलता है, परंतु उपरोक्त प्रशस्ति में समुद्रगुप्त को 'गो-शत सहस्र प्रदायिनः'। अर्थात् एक लाख गायों का दान देने वाला कहा गया है, जो अश्वमेध यज्ञ में ही दिया जाता था। फिर परवर्ती गुप्त अभिलेखों में उसे 'चिरोत्सन्नाश्वमेधाहर्ता' अर्थात् परित्यक्त अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान करने वाला कहा गया है। उसके मुद्राओं से भी उसके द्वारा अश्वमेध यज्ञ कराए जाने का उल्लेख मिलता है। इन मुद्राओं पर 'अश्वमेध पराक्रम' उपाधि अंकित है और एक ओर यज्ञ के रूप में घोड़ा बंधा उत्कीर्ण है। उपरोक्त तथ्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि समुद्रगुप्त ने अश्वमेध यज्ञ का आयोजन किया था।

जहाँ तक उसके शासन प्रबंध का सवाल है, उसके अभिलेखों से इस संबंध में विशेष जानकारी नहीं मिलती है, लेकिन उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर मालूम होता है कि चूँकि इसका साम्राज्य काफी विशाल था, जिस पर प्रत्यक्ष रूप से शासन करना कठिन ही नहीं, असंभव था। अतः उसने सामंती प्रथा का प्रचलन किया और अपने साम्राज्य के दूरस्थ प्रदेशों का शासन अपने सम्राटों को सौंप दिया, जो सम्राट के प्रतिनिधि के रूप में शासन करते थे। प्रयाग प्रशस्ति से पता चलता है कि समुद्रगुप्त ने अपने साम्राज्य को अनेक भुक्तियों तथा विषयों में विभाजित कर रखा था, जिसे क्रमशः आधुनिक प्रांत और जनपद अथवा